सम्यग्दृष्टि गृहस्थ का स्वरूप और उसके कृत्य, देशविरति श्रावक के जघन्य, मध्यम, उत्कृष्ट, तीन भेद और इनका सविस्तर स्वरूप, और उनके कृत्य, १२ व्रातों का स्वरूप, धर्मी गृहस्थ के अहोरात्र के कृत्य, त्रिकाल पूजन की विधि, इत्यादि अनेक तत्वो का इसमे समावेश है ॥

स्वशक्त्यनुसार इसके छपवाने में हर प्रकार की शुद्धि का ध्यान रखा गया है, तथापि यदि दृष्टिदोष से छापे में कोई अशुद्धि रही हो तो वाचकवर्ग कृपाकरी शुद्ध कर लेवे ॥

आप श्रीसंघकादास,

जसवंतराय जैनी, लाहौर।

॥ ॐ श्री परमात्मने नमः ॥

जैनमतका स्वरूप ।

यह संसार द्रव्यार्थिक नयके मत से अनादि अनंत सदा साश्वता है, और पर्यायार्थिक नय के मत से समय समय में उत्पत्ति और विनाशवान् है, इस संसार में अनादि से दो दो प्रकार का काल प्रवर्त्तता है, एक अवसर्पिणी, और दूसरा उत्सर्पिणी, जिसमें दिन प्रति दिन आयु, बल, अवगाहना प्रमुख सर्व वस्तु घटती जाती है, तिस काल का नाम अवसर्पिणी कहते हैं। और जिसमें सर्व अच्छी वस्तु की वृद्धि होती जाती है, तिसका नाम उत्सर्पिणी काल कहते हैं। इन पूर्वोक्त दोनों कालों में काल के करे छे छे विभाग हैं, जिसको अरे कहते है। अवसर्पिणी का प्रथम सुखम १, सुखम २, सुखम दुखम ३, दुखम सुखम ४, दुखम ५, दुखम दुखम ६ है। उत्सर्पिणी में छहों विभाग उलटे जानने। जब अवसर्पिणी काल पूरा होता है, तब उत्सार्पिणी काल शुरू होता है, इसी तरह अनादि अनंत काल की प्रवृत्ति है॥

प्रत्येक अवसर्पिणी उत्सार्पिणी के तीसरे चौथे अरे में चौवीस अर्हन् तीर्थंकर अर्थात् सच्चे धर्म के कथन करने वाले उत्पन्न होते हैं। जो जीव धर्म के वीस कृत्यकर्त्ता है, सो भवांतरों में तीर्थंकर होता है, वह वीस कृत्य यह हैं।

अरिहंत १, सिद्ध २, प्रवचन अर्थात् श्रुतवान् संघ ३, गुरु धर्मोपदेक ४, स्थविर ५, बहुश्रुत ६, और अनशनादि विचित्र तप करने वाला तपस्वी अथवा सामान्य साधु ७, इन सातो की वात्सल्यता करे, अर्थात् इनके साथ अनुराग करे, यथावस्थित गुण कीर्त्तन करे, यथायोग्य पूजा भक्ति करे, तो तीर्थंकर पद उपार्जन

करे ७। पूर्वोक्त सातों पदों का वारंवार ज्ञानोपयोग करे, तो तीर्थंकर पद उपार्जन करे ८, दर्शन सम्यक्त्व ९, ज्ञानादि विषय विनय १०, इन दोनों में अतिचार न लगावे, अवश्यमेव करने योग्य संमय व्यापार में अतिचार न लगावे ११, मूलगुण उत्तरगुण में अतिचार न लगावे १२, क्षण लवादि काल में संवेग भावना और ध्यान की सेवना करे १३, तप करे, और साधुओं को उचित दान देवे १४, दश प्रकार की वैयावृत्य करे १५, गुरु आदिकों को कार्य करण द्वारा चित्तमें समाधि उपजावे १६, अपूर्व ज्ञान ग्रहण करे १७, श्रुतभक्ति युक्त प्रवचन की प्रभावना करे १८, श्रुत का वहु मान करे १९, यथा शक्ति देशना, तीर्थ यात्रादि करके प्रवचन की प्रभावना करे २०। इनमें से एक, दो, तीन, चार, उत्कृष्ट वीस पद के सेवने से जीव तीर्थंकर पद उपार्जन करता है। यह कथन श्रीज्ञाता सूत्रमें है ॥

जो जीव तीर्थंकर होता है, सो निर्वाण अर्थात् मोक्षको प्राप्त होजाता है, पुनः संसार में नहीं आता है, पूर्वोक्त धर्म कृत्यों के करने से जितने तीर्थंकर पूर्वे होगये हैं, और जितने आगे को होवेंगे, वह सर्व एकसरीखा ही ज्ञान कथन करते हैं ॥

तीर्थंकर दो प्रकार का धर्म कथन करते हैं, श्रुतधर्म १, और चारित्र धर्म २, श्रुत धर्म में द्वादशांग गणिपिडग, और चारित्रधर्म में साधु का और गृहस्थ का धर्म ॥

श्रुतधर्ममें नवतत्व, षट् द्रव्य, षट् काय, चार गतियों का वर्णन है तिन में प्रथम नवतत्व का किंचिन्मात्र स्वरूप लिखते हैं ॥

जीव १, अजीव २, पुण्य ३, पाप ४, आश्रव ५, संवर ६ निर्जरा, ७, वंध ८, और मोक्ष ९, यह नव तत्व के नाम हैं ॥

जैनमतमें चैतन्य लक्षण जीवका है, सो जीव ज्ञानादि धर्मोंसे कथंचित् भिन्न है, कथंचित् अभिन्न है। तथा विवृत्तिमान् (विवृत्ति-

नाम परिणामका है, तिसके होनेसे जीव परिणामी) है; इसवास्ते नरक १, तिर्यंच २ मनुष्य ३ देव ४, इन चारों गतियोंमें, तथा एकेंद्रिय १ द्वीद्रिय २, त्रींद्रिय ३, चतुरिंद्रिय ४, पंचेंद्रिय ५ इन पांचों जातियोंमें विविध प्रकार की उत्पत्ति रूप परिणामोंका जो अनुभव करनेवाला, अर्थात् भोगनेवाला तथा शुभाशुभ कर्मका कर्त्ता, और अपने करे शुभाशुभ कर्मका भोक्ता, और साधन द्वारा सर्व कर्मका नाश करके मोक्ष पदको प्राप्त होनेवाला, द्रव्यार्थे सदा अनादि अनंत, अविनाशी नित्य, और पर्यायार्थे अनेक अवस्थाओं की उत्पत्ति और विनाश वाला, ऐसे पूर्वोक्त विशेषण संयुक्त होवे तिसको जैनमतमें जीव कहते हैं ॥ १ ॥

इन पूर्वोक्त सर्व लक्षणों से जो विपरीत होवे, अर्थात् जिसमें चैतन्यादि लक्षण न होवें, सो अजीव :—धर्मास्तिकाय १, अधर्मास्तिकाय २, आकाशास्तिकाय ३, पुद्गल, (परमाणु से लेके जो२ वर्ण गंध रस, स्पर्श, शब्द वाला है, सो पुद्गल) ४, और काल ५, यह पांच द्रव्य अजीव हैं ॥ २ ॥

जिसके उदय से जीव को सुख होवे, सो पुण्य ॥ ३ ॥

जिसके उदय से जीव को दुःख होवे, सो पाप ॥ ४ ॥

मिथ्यात्व १, अविरति २, प्रमाद ३, कषाय ४, और योग ५, इन पांचों का नाम आश्रव तत्व है ॥ ५ ॥

पूर्वोक्त आश्रव का जो निरोध करना, सो संवर है ॥ ६ ॥

बन्धे हुए कर्मों का अर्थात् स्पृष्ट, बद्धस्पृष्ट, निद्धत्त और निकाचित रूप करके जो कर्म का बन्ध करा है, तिन कर्मों को तप, चारित्र, ध्यान, जपादि करके जीव से पृथक् करना तिसका नाम निर्जरा तत्व है ॥ ७ ॥

जीव और कर्म, इन दोनों का लोलीय भाव परस्पर क्षीर

नीर की तहर जो मिलाप होना, सो बन्धतत्व ॥ ८ ॥

स्थूल शरीर औदारिक और सूक्ष्म शरीर तैजस्, कार्मण इन सर्व का आत्मा से जो साधन द्वारा असन्त वियोग अर्थात् फिर जीव के साथ कदापि बन्ध न होवे, तिसको मोक्ष तत्व कहते हैं ॥ ९ ॥

षट्द्रव्य के नाम और तिनका स्वरूप लिखते हैं।

धर्मास्तिकाय—जीव और पुद्गल के चलने में सहायकारी, जैसे मछली के चलने में जल ॥ १ ॥

अधर्मास्तिकाय—जीव और पुद्गल की स्थिति में सहायकारी, जैसे रस्ते में पंथी को वृक्ष की छाया ॥ २ ॥

आकाशास्तिकाय—सर्व पदार्थों के रहने वास्ते अवकाश देता है, जैसे बेरां को कूंडा ॥ ३ ॥

जीवास्तिकाय—चैतन्यादि लक्षणोंवाला, प्रथम जीवतत्व में लिख आये है ॥ ४ ॥

पुद्गलास्तिकाय—कारण रूप परमाणुओं से ले के सर्व कार्य रूप वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श, शब्द, छाया, आतप, उद्योत, पृथिवी, चन्द्र, सूर्य, ग्रह, नक्षत्र, तारे, नरक, स्वर्गादि जो स्थान हैं, तथा पृथिवी कायिक का शरीर, एवं जल, अग्नि, पवन, वनस्पति के शरीर, यह सर्व पूर्वोक्त पुद्गलास्तिकाय के कार्य है। जो जो दृश्यमान वस्तुओं मे उलट पलट होरहा है, और जो विद्यामान सायंस विद्या से विचित्र प्रकार की वस्तु उत्पन्न होती है; यह सर्व पुद्गलास्तिकाय की शक्ति से होरहा है और इसका कथन जैनमत के योनिप्राभृतादि शास्त्रों में है ॥ ५ ॥

जो नवे से पुराना आदि जगत् व्यवस्था का निमित्त है, सो काल द्रव्य है ॥ ६ ॥

जैनमत में छै (६) वस्तुओं को जीव सहित मानते हैं, जिनको

षट्काय कहते है, तिनके नाम और स्वरूप लिखते हैं। पृथिवी काय १, अप्काय २, तैजस्काय ३, वायुकाय ४, वनस्पतिकाय ५, और त्रसकाय ६। इन में जो पृथिवी है, सो सर्व एकेंद्रिय अर्थात् स्पर्शनेंद्रिय वाले असंख्य जीवों के शरीरों का पिंड है परं इस पृथिवी के जिन भाग ऊपर अग्नि, क्षार, ताप, शीतादिक मिलाप होता है, तिस भाग के जीव मृत्यु होजाते है, और तिन जीवों के शरीर रह जाते हैं, तिसको अचित्त पृथिवी कहते है। इस पृथिवी में समय समय असंख्य जीव उत्पन्न होते हैं, और असंख्य जीव मृत्यु होते है, परं यह पृथिवी प्रवाह से इसी तरह अनादि अनंत काल तक रहेगी। चन्द्र, सूर्य, तारे आदि सर्व इसी तरह जान लेने ॥ १ ॥

पानी ही जिन जीवों का शरीर है, सो अप्कायिक है। जगत् में जितना पानी है, सर्व असंख्य जीवों के शरीर का पिंड है, अग्नि आदि शस्त्रों के लगने से अचित्त अप्काय कही जाती है, अन्यथा सर्व जल सजीव है ॥ २ ॥

तैजस्काय सो अग्नि। अग्नि असंख्य जीवो के शरीर का पिंड है, जब अग्नि के जीव मृत्यु होजाते है, तब कोयले भस्मादि जीवों के शरीर का पिंड रह जाता है ॥ ३ ॥

पवन भी असंख्य जीवों के शरीर का पिंड है, पवन के जीवों का शरीर नेत्र से देखनें में नहीं आता है। और पंखे आदि से जो पवन होती है, तिस पवन में जीव नही होते है। क्योंकि वह असली पवन नहीं है किन्तु पंखे आदि की प्रेरणा से पुद्गलों में पवन सदृश परिणाम होने से पवन मालूम होती है ॥ ४ ॥

वनस्पतिकाय, जो कन्दमूल, काई, प्रमुख वनस्पति है, तिन में अनन्त जीव हैं, और जो वृक्षादि वनस्पति है, तिनमे असंख्य जीव हैं। जिस वनस्पति को अग्नि आदि शस्त्र का सम्बन्ध होवे, और

जो वनस्पति सूक जावे, सो वनस्पति के जीवों का शरीर है। किन्तु वनस्पति के जीव तिनमें नहीं ॥ ५ ॥

यह पूर्वोक्त पृथिवी, अप्, तैजस्, वायु, वनस्पति पांचों काय में केवल एक स्पर्शेंद्रिय है, इसवास्ते इन पांचों काय के जीव एकेंद्रिय कहे जाते हैं, इनका विस्तार से स्वरूप प्रज्ञापना सूत्र मे है, और इन पांचों में जीव की सिद्धि के प्रमाण का स्वरूप आचारांग सूत्र की निर्युक्ति में है, और इन पांचों के जीव समय समय में परस्पर मर के उत्पन्न होते हैं।

त्रसकाय, तिसमें द्वींद्रिय, त्रींद्रिय, चतुरिंद्रिय पंचेंद्रिय, इन चारों जाति के जीवों को त्रसकाय कहते हैं ॥

अन्य मत वाले वनस्पति को पृथिवी के अन्तर्भूत मान के पृथिवी, जल, अग्नि, पवन इनको चार तत्व वा चारभूत मानते है, परन्तु जैनमत में वैसे नहीं मानते हैं। जैनमत में तो इनको जीव और जीवों ने जो शरीरपणे अनंत परमाणु ग्रहण करके कर्मों के निमित्त से असंख्य शरीरों का जो पिंड रचा है, वही पृथिवी आदि पांच हैं, ऐसा मानते हैं। और यह पांचों प्रवाह से अनादि हैं पहले२ जीव मृत्यु होते जाते हैं, और तिन ही शरीरों में वा अन्य शरीरों में नवीन जीव इनही पांचों में से मर के (पर्याय बदल के) उत्पन्न होते हैं, और तिन जीवों के विचित्र प्रकार के कर्मोदय से विचित्र प्रकार के रङ्ग रूप है, और इनके शरीर में जो परमाणुओं का समूह है, तिन में अनन्त तरह की शक्तियां हैं, और तिन के परस्पर मिलने से अनेक प्रकार के कार्य जगत् में उत्पन्न होते हैं, और इनके परस्पर मिलने में काल १, स्वभाव २, नियति ३, कर्म ४, उद्यम परस्पर की प्रेरणा५, इन पांचों शक्तियों से पदार्थों के मिलने से विचित्र प्रकार की रचना अनादि प्रवाह से हुई है, और होवेगी । यह पांच शक्तियां जड़

चैतन्य पदार्थों के अन्तर्भूत ही है, पृथक् नहीं। इसवास्ते इस जगत् के नियमों का नियन्ता, और कर्त्ता ईश्वर को नही मानते हैं, किन्तु जड़ चैतन्य पदार्थों की शक्तियां ही कर्त्ता और नियंता हैं॥

जैनमत में चार गति मानते है, नरकगति १, तिर्यचगति २, मनुष्यगति ३. और देवगति ४, इनमें से नरक उसको कहते हैं, जिसमें जीवों को निःकेवल दुःख ही है, किंचिन्मात्र भी सुख नही हैं, इन नरकवासियों के रहने का स्थान सात पृथिवियों में मानते हैं, तिन के नाम—रत्नप्रभा १, शर्करप्रभा २, वालुप्रभा ३, पंकप्रभा ४, धूमप्रभा ५, तमःप्रभा ६, तमः तमःप्रभा ७। यह सातों पृथिवियां अधोलोक में मानते हैं, और इन पृथिवियों का परस्पर अंतरादि सर्व स्वरूप प्रज्ञापनादि शास्त्रों में है, इन सातों पृथिवियों के रहनेवाले जीवों को नरक गतियें कहते हैं, तिन के दुःखो का स्वरूप प्रज्ञापना, प्रश्न व्याकरण, सूत्रकृतांगादि सूत्रों में है॥ १॥

पृथिवी, जल, अग्नि, पवन, वनस्पति, द्वींद्रिय, त्रींद्रिय, चतुरिंद्रिय, और गाय, भैंस, घोड़ादि पंचेंद्रिय, यह सर्व जीव तिर्यचगति में गिने जाते हैं॥ २॥

मनुष्य गति में सर्व मनुष्य गिने जाते हैं॥ ३॥

देव गति में चार जाति के देवता गिने जाते हैं, तिनकेनाम—भुवनपति १, व्यंतर २, ज्योतिषी ३, और वैमानिक ४। तिनमे से भुवनपति, और व्यंतर, यह दोनों जाति के देवता इसी ही पृथिवी में रहते है॥ ४॥

ज्योतिषी देवता, सूर्य, चन्द्र, ग्रह, नक्षत्र, तारे जो आकाश मण्डल में अपने देखने में आते हैं, तिनमे सूर्य और चन्द्र तिर्यग् लोक में असंख्य हैं, और मंगल आदि अठासी ८८ जाति के ग्रह, अभिजितादि अठाईस२८ जाति के नक्षत्र, और तारे यह सर्व तिर्यग्

लोक में असंख्य है, यह सर्व ज्योतिषी देवता रूप तीसरी जाति का देवंकोल है ॥ ३ ॥

चौथा भेद वैमानिक देवताओं का है। ज्योतिषी देवताओं के ऊपर असंख्य कोड़ा कोड़ी योजन के अन्तरे सौधर्म १, ईशान २, यह दो देवलोक बराबर बराबर हैं। तिनके ऊपर असंख्य योजन के अन्तरे सनत्कुमार ३, माहेंद्र ४, यह दो देवलोक हैं। इसी तरह असंख्य२ योजन के अन्तरे अगले ऊपरले स्वर्ग है, तिनके नाम—ब्रह्म ५, लंतक ६, शुक्र ७, सहस्रार ८, आनत ९, प्राणत १०,अरुण ११ अच्युत १२,इनके आगे नव ग्रैवेयक देवलोक तिनके नाम—भद्र १, सुभद्र २, सुजात ३, सौमनस् ४, प्रियदर्शन ५,शुदर्शन ६, अमोघ७, सुप्रबुद्ध ८, यशोधर ९, इनके ऊपर पांच अनुत्तर विमान बराबर हैं, तिनके नाम—पूर्वदिशा में विजय १, दक्षिण में वैजयन्त २, पश्चिम में जयंत ३, और उत्तर में अपराजित ४, ये चारों दिशा में हैं,और इनके मध्य में सर्वार्थसिद्ध ५,यह छव्वीस २६स्वर्ग वैमानिक देवताओं के हैं। इन सर्व देवताओं के भुवन नगर,विमानादिकों का स्वरूप, लंबाई, चौड़ाई और यह सर्व आकाश में किस तरह खड़े हैं, और तिनमें रहने वाले देवताओं को कैसे सुख है,तथा तिनकी आयु, अवगाहना,इत्यादिकों का विस्तार सहित वर्णन प्रज्ञापनासूत्र संग्रहणी सूत्रादिकों मे है ॥

सर्वार्थसिद्ध विमान से ऊपर तेरह १३ योजन के अन्तरे लोकांत है। तिम लोकांत आकाश को जैनमत में सिद्धक्षेत्र कहते है तिम आकाशक्षेत्र में मुक्तात्मा रहते हैं तिनके ऊपर अलोक है,अलोक उसको कहते हैं,जो निःकेवल आकाशमात्र ही है, तिसमें धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय,जीवास्तिकाय, पुद्गलास्तिकाय,और काल, ये पांचों द्रव्य नहीं हैं। इस लोक के चारों तरफ ऊपर नीचे जो निःकेवल आकाश है, तिसको अलोक कहते हैं, सो अलोक

अनंत हैं, इसमें जड़ चैतन्य की गति न हुई; न होवेगी, इन चारों जाति के देवताओं में जैसे २ शुभकर्म जीव करते हैं, तिनकी प्रेरणा से तैसी २ देवगति में उत्पन्न होते हैं, यह दोनों लोकालोक किसी ने भी रचे नहीं है,किन्तु अनादि अनंत स्वतःसिद्ध हैं। इति देवगति।

जैनमत में आठकर्म मानते हैं, तिनके नाम—ज्ञानावर्णीय १, दर्शनावर्णीय २, वेदनीय ३, मोहनीय ४, आयुः ५, नाम ६, गोत्र ७, अन्तराय ८। इन सर्व कर्मों के १४८ एक सौ अडतालीस मध्यम भेद हैं। इन कर्मों का विस्तार सहित वर्णन षट् कर्मग्रन्थ, पंचसंग्रह, कर्मप्रकृति, प्रज्ञापनादि सूत्रों में है॥

कर्म उसको कहते हैं, जिनके प्रभाव से सर्व संसारी जीव देह धारण करके अनेक प्रकार की सुख दुःखादि अवस्था भोग रहे हैं। और यह कर्म स्वरूप में जड़ हैं, जीवों के शुभाशुभ काम करने से अनंतानंत परमाणु अनंत स्कंध आत्मा के साथ सम्बन्धवाले होते है, तिसको कर्म कहते हैं, जैसे तैल चोपड़े हुए शरीर के ऊपर सूक्ष्म रज जम जाती है, ऐसे ही पूर्वकृतकर्मोदय से जीव में क्रोध मान, माया, लोभ, राग, द्वेषादि चिक्कणत्वता से जड़ का सम्बन्ध आत्मा को होता है। जब वह कर्म उदय होते हैं, तब तिनके कारण जीव एकसौ बाईस तरह के दुःख सुख भोगते हैं इत्यादि अनेक तरह का कर्मस्वरूप जैनमत में मानते हैं॥

अथ जैनमत का सामान्यसे मंतव्यामंतव्य लिखते हैं ।

१-अरिहन्त और सिद्ध इन दोनों पदों को परमेश्वर पद मानते हैं ॥

२-एक ईश्वर है, ऐसे एकान्त नहीं मानते हैं

३-ईश्वर को सर्वव्यापक नहीं मानते हैं परन्तु ईश्वरपद की ज्ञायकशक्ति को सर्वव्यापक मानते हैं ॥

४-ईश्वर को सृष्टि का कर्त्ता नहीं मानते हैं ॥

५-संसार को प्रवाह से अनादि मानते हैं ॥

६-ईश्वर को जगत् का नियन्ता नहीं मानते हैं

७-जगत् का नियन्ता जड़ चैतन्य की काल, स्वभाव, नियति कर्म, और पुरुपार्थ रूप अनादि शक्तियों को मानते हैं ॥

८-ईश्वर जीवों के शुभाशुभ कर्मफल का दाता नहीं परं ईश्वरपद को साक्षी ज्ञातृ रूप से मानते हैं ॥

९-ईश्वर जो चाहे कर सक्ता है, ऐसा नहीं मानते हैं ॥

१०-ईश्वर को जीवनमोक्षअवस्था में अर्थात् त्रयोदशम गुणस्थान में धर्मोपदेश का दाता मानते हैं परन्तु विदेहमोक्ष हुए पीछे नहीं ॥

११-ईश्वर का जगत् में अवतार होना नहीं मानते हैं ॥

१२-मोक्षपद को अनादि अनंत मानते हैं ॥

१३-मोक्षपद में अनंत आत्मा मानते हैं ॥

१४-मोक्षपद आस्तित्वजाति करके एक ही मानते हैं ॥

१५–मोक्षात्मा सर्व परस्पर जहां एकात्मा है, तहां अनंत आत्मा हैं, दीपकों के प्रकाश की तरह स्थानांतरकी जरूरत नहीं ॥

१६–जगद्वासीजीव और मोक्षात्मा दोनों स्वरूप में एक समान हैं, परं बंधाबंध से भेद है ॥

१७–जगद्वासीआत्मा शरीरमात्र व्यापक है,सर्वव्यापक नहीं॥

१८–जगद्वासीआत्मा अपने करे शुभाशुभ कर्मों से अनेक तरह की योनियों में उत्पन्न होता है ॥

१९–जगद्वासीआत्मा अपने २ निमित्तों से कर्मफल भोक्ते हैं, अन्य कोई फलदाता नहीं ।

२०–जगत् में जड़ चैतन्य द्रव्य अनादि हैं; किसी के रचे हुए नहीं है ॥

२१–जगत् में जीव अनंतानंत है अतः जीवों के मोक्ष मे जाने से संसार कदापि जीव रहित नहीं होता है ॥

२२–जीवके स्वरूप और ईश्वर के स्वरूप में एक सदृशता है ॥

२३–कर्मों के संबंध से जीव समल है, और कर्मरहित होने से ईश्वर निर्मल है ॥

२४–जो अठारह दूषणों से रहित होवे, तिसको देव, अर्थात् परमेश्वर मानते हैं ॥

२५–पंचमहाव्रतधारी, सम्यक्त्व ज्ञानसहित शुद्धप्ररूपक को गुरु मानते हैं ॥

२६–पूर्वोक्त अठारह दूषण रहित देवने जो मुक्ति का मार्ग कहा है, तिसको धर्म मानते हैं ।

२७–द्रव्य छे ६ मानते हैं।

२८–तत्व ९ मानते हैं।

२९–काया षट् ६ मानते हैं।

३०–गति चार ४ मानते हैं।

३१–जीव और अजीव दो राशी अर्थात् इस जगत् में चैतन्य, और जड़, यह दो ही वस्तु हैं।

पूर्वोक्त जो सामान्य प्रकारसे लेख लिखा है, इसका सम्यक् स्वरूप ४ चार निक्षेप, ७ सप्त नय, २ दो प्रमाण स्याद्वादसप्तभङ्गी की रीति से जाने, तिसको श्रुतधर्म्म कहते हैं, इस श्रुतधर्म्म के स्वरूप कथन करने वास्ते ही द्वादशाङ्ग गणिपिड़ग श्रुतज्ञान है। इस पूर्वोक्त कथन को जो सम्यक् प्रकारे श्रद्धे, तिसका नाम सम्यग्दर्शन है। यह दोनों ही (द्वादशाङ्गगणिपिड़ग श्रुतज्ञान, और सम्यग्दर्शन) श्रुतधर्म्म में गिने जाते हैं। यह संक्षेपसे श्रुतधर्म्मका स्वरूप कथन किया। तथा अरिहन्त परमेश्वरकी जो त्रिकाल विधिसे पूजा करनी, इत्यादिक सर्व सम्यक्त्व की करणी है।

अथ दूसरा चारित्रधर्म्म, सो तीर्थङ्करोंने दो प्रकारका कथन किया है। एक साधुधर्म्म १. और दूसरा गृहस्थधर्म्म २। तिनमें साधुधर्म्म सतरे १७भेदे संयम–५ पांच महाव्रत (प्राणातिपातविरमण १, मृषवादाविरमण २, अदत्तादानविरमण ३, मैथुनविरमण ४, और परिग्रहविरमण ५) क्रोध १, मान २, माया ३, लोभ ४, इन का त्याग। पांच इन्द्रियों के विषयसे निवृत्ति ५। मनदण्ड १, वचन दंड २, कायादंड ३, इन तीनोंका त्याग। एवं सर्व सतरह १७ भेद संयमके पाले तथा क्षमा १, मार्दव २, आर्जव ३, निर्लोभता ४, लाघवआर्किचनता ५, सत्य ६, संयम ७, तप ८, शौच ९, और ब्रह्मचर्य १० यह दस प्रकार का यतिधर्म्म पाले। ४२ बेतालीस

दूषण रहित भिक्षा लेवे। रात्रिको चारों आहार (अन्न, पाणी, खादम, स्वादम) न करे। वासी न रक्खे। विना कारण एक नगर में सदा न रहे किसी मकान का वा चेला, चेली, श्रावक, श्राविका का ममत्व न रक्खे। किसी प्रकार की विना कारण सवारी न करे। पक्षी की तरह अपने धर्मोपकरण लेके नङ्गे पगोंसे ग्राम नगरोंमें विहार करके जगज्जन चारों वर्णोंको धर्मोपदेश करे। धर्म्म सुननेवालों के पास से किसी प्रकारकी चढ़त न लेवे। भिक्षा भी थोड़ी२ बहुत घरों से लेवे। भिक्षा ऐसी लेवे, जिससे भिक्षा देनेवालेको किसी प्रकारकी पीड़ा न होवे। चातुर्मासमें लकड़ी के पाट ऊपर, और शेष आठ मासमें भूमिके ऊपर शयन करे। जो कोई शत्रुता करे, तिसका भी कल्याण चाहे, इत्यादि अनेक शुभगुणों करके संयुक्त जो पुरुष होवे, तिस पुरुषको जैनमतमें साधु मानते है, और तिसका जो कर्त्तव्य होवे तिसको साधुका धर्म्म कहते हैं। यह साधुधर्म्म का स्वरूप संक्षेप से कथन है।

अब दूसरा गृहस्थका धर्म्म संक्षेपसे कथन करते हैं।

गृहस्थधर्म्म दो प्रकारका है। अविरतिसम्यग्दृष्टि १, और देशविरति २॥ अविरति सम्यग्दृष्टि उसको कहते हैं; जो कोई प्रकारकी भी विरति (त्याग) नहीं कर सकता है। निःकेवल त्रिकाल अरिहंतकी पूजा करता है, और आठ प्रकारके दर्शनाचार को निरतिचार पालता है, वह आचार यह है—जिनवचनमें शंका न करे १, जिनमतके सिवाय अन्य किसी मतकी वांछा न करे २, जिनमतकी करणीके फलमें शंका न करे ३, किसी पाखंडी आदि के मंत्र, यंत्र, तंत्रादिक का चमत्कार, ऋद्धिसत्कार, सन्मान, पूजा, भक्ति, इत्यादि देखके मूढ़दृष्टि अर्थात् जैनधर्मोपरि मनमें अनादर लाना, सो नहीं लावे ४, गुणवंत के गुणोंकी महिमा, स्तुति करके

वृद्धि करे ५, जो कोई धर्म्मसे गिरता होवे, तिसको हरएक उपायसे जिनधर्म्म में स्थिर करे ६, जो अपना सधर्मी होवे, चाहो किसी जाति का होवे,तिसकी अपने प्रियकुटुम्बसे भी अधिक अशन, वसन, पुष्प, तंबोल, धन, दानादि करके भक्ति करे, तिसका नाम वात्सल्य कहते हैं. सो सधर्मी की वात्सल्यता करे, तीर्थयात्रा, रथयात्रादि महोत्सव करे, पूजा, प्रभावना, सदाचार आदरे, धर्मोपदेश करे, जिससे अरिहंतभाषितधर्म्म की प्रभावना हो, (जिसके करने से जगत् में धर्म की दीपना वृद्धि होवे उसका नाम प्रभावना है) ८। यह आठों आचार यथाशक्ति पाले । यह अविरति सम्यग्दृष्टि श्रावकका धर्म्म संक्षेपसे जानना ।

देशविरति श्रावकका धर्म तीन प्रकारका है । जो कर्त्तव्य अविरति सम्यग्दृष्टिका ऊपर लिख आये हैं, सो कर्त्तव्य तीनों प्रकार के देश विरतियोंका भी है, और जो विशेष हैं, सो लिखते हैं जघन्य १, मध्यम २, और उत्कृष्ट ३ ।

तिनमें जघन्य श्रावक के लक्षण लिखते हैं। जो जानके स्थूल जीव की हिंसा न करे, मद्य (शराब) मांसादि अभक्ष्य वस्तुओं का त्याग करे, और नमस्कार सहित प्रत्याख्यान करे, सो जघन्य श्रावक जानना १,

जो धर्मयोग्यगुणों करी व्याप्त होवे, षट्कर्म और षडावश्यक सदा करे और बारह व्रत धारण करे, ऐसे सदाचारवाले गृहस्थको मध्यम श्रावक जानना २ ।

जो सचित आहार को त्याग दे, दिनमें एकवार भोजन करे, और ब्रह्मचर्य को पाले, सो गृहस्थ उत्कृष्ट श्रावक जानना ॥ ३ ॥

मध्यम श्रावक का स्वरूप किञ्चित् विस्तार से लिखते हैं ।

प्रथम धर्म की योग्यता के एकवीस (२१) गुण होने चाहियें, सो लिखते है, गम्भीर होवे १, रूपवान, सम्पूर्णांगोपांग सुन्दर

पंचेन्द्रिय पूर्ण होवे २। प्रकृति सौम्य, स्वभावसे सौम्याकारवाला होवे ३। लोकप्रिय, यह लोकपरलोकविरुद्ध काम न करे, और दान शीलादि गुणो करके संयुक्त होवे ४। अक्रूर, अक्लिष्ट अध्यवसाय मनका मलीन न होवे ५। भीरु, इह लोक परलोकके अपाय दुःखों से डरता हुआ निःशंक अधर्ममे न प्रवर्त्ते ६। अशठ, निश्छल आचारनिष्ठ किसीके साथ ठगी न करे ७। सदाक्षिण्य, अपना काम छोड़के भी पर काम कर देवे ८। लज्जालु, अकार्य करनेकी बात सुनके लज्जावान् होता है; और अपना अंगीकार किया हुआ धर्म सदनुष्ठान कदापि नही त्याग सकता है ९। दयालु, दयावान् दुःखी जन्तुओं की रक्षा करनेका अभिलाषुक होता है, क्योंकि धर्म का मूलही दया है १०। मध्यस्थ, रागद्वेषविमुक्तबुद्धि पक्षपात रहित ११। सौम्यदृष्टि, किसीको भी उद्वेग करनेवाला न होवे १२। गुणरागी, गुणो का पक्षपात करे १३। सत्कथा, सपक्षयुक्त सत्कथा सदाचार धारणे से शोभनिक प्रवृत्ति के कथन करनेवाले जिसके सहायक कुटुम्बीजन होवें, अर्थात् धर्म्म करते को परिवारके लोक निषेध न करें १४। सुदीर्घदर्शी, अच्छी तरह विचारके परिणाम में जिससे अच्छा फल होवे, सो कार्य करे १५। विशेषज्ञ, सार असार वस्तु के स्वरूपको जाने १६। वृद्धानुग, परिणत मतिज्ञान वृद्ध सदाचारी पुरुषोंके अनुसार चले १७। विनीत, गुरुजनका गौरव करे १८। कृतज्ञ, थोड़ासा भी उपकार इह लोकपरलोकसम्बन्धी किसी पुरुष ने करा होवे, तो तिसके उपकारको भूले नहीं, अर्थात् कृतघ्न न होवे १९। परहितार्थकारी, अन्योंके उभयलोक हितकारी कार्य करे २०। लब्धलक्ष, जो कुछ सीखे, श्रवण करे, तिसके परमार्थ को तत्काल समझे २१।

तथा षट्कर्म नित्य करे। वह यह हैं:—देवपूजा १। गुरु उपास्ति २। स्वाध्याय ३। संयम ४। तप। और दान ६। तथा

षडावश्यक करे, तिनके नामः– सामायिक १। चतुर्विंशतिस्तव २। वंदनक ३। प्रतिक्रमण ४। कायोत्सर्ग ५। और प्रत्याख्यान ६। तथा बारह व्रत धारण करे, तिनका स्वरूप नीचे लिखते है।

संकल्प करके निरपराधी त्रस जीव की हिंसा का त्याग। यह प्रथम स्थूल प्राणातिपातविरमण व्रत ॥ १ ॥

द्विपद १, चतुष्पद २, अपद अर्थात् भूमि आदि स्थावर वस्तु संबंधी ३, इनकी बाबत मृषा (झूठ) बोलने का त्याग। कोई पुरुष मातबर जानके अपनी धन आदि वस्तु रख जावे,जब वह मांगे, तब ऐसा नहीं कहना कि तूं मेरे पास अमुक वस्तु नहीं रख गया है। ऐसा झूठ नहीं बोले ४; कूड़ी साक्षी अर्थात् झूठी गवाही न देवे ५। यह पांच प्रकारका झूठ न बोले। यह दूसरा स्थूल मृषावाद विरमण व्रत ॥ २ ॥

सचित्त द्विपद चतुष्पदादि १; अचित्त सुवर्ण रूप्यादि २; मिश्र अलंकृतस्त्री आदि ३, तिस विषयक चोरी का त्याग। तथा कोई धन आदि स्थापन कर गया होवे अथवा किसी का दबा हुआ धन वा किसी का पड़ा हुआ धन; इनको ग्रहण न करे। यह तीसरा स्थूल अदत्तादानविरमण व्रत ॥ ३ ॥

जो स्त्री परविवाहिता अथवा संगृहीता होवे तिर्यचणी और देवी, तथा वेश्या; इनके साथ मैथुन सेवने का त्याग करे; और स्वदारा संतोष अंगीकार करे। यह चौथा स्वदारासंतोष परस्त्रीविरमण व्रत ॥ ४ ॥

परिग्रह धन धान्यादि नव प्रकारका, तिसका स्वइच्छाप्रमाण से अधिक रखनेका त्याग करे। यह पांचमा परिग्रहपरिमाणव्रत। ५

पट्ही दिशामें धर्मकार्य वर्जके शेष अपने व्यापारादि वास्ते अमुक २ दिशामें इतने २ योजन उपरांत नहीं जाना, ऐसा नियम

अंगीकार करना। यह छठा दिशापरिमाणव्रत ६।

मांस, मदिरा, रात्रिभोजनादि बाईस २२ अभक्ष्य भक्षण का त्याग करे, और पंद्रह प्रकार के वाणिज्यका त्याग करे, वा परिमाण करे। पंद्रह वाणिज्यके नाम:—अंगारकर्म १, वनकर्म २, शकटकर्म ३, भाटककर्म ४, स्फोटककर्म ५, दंतवाणिज्य ६, लाक्षावाणिज्य ७, रसवाणिज्य ८, केशवाणिज्य ९, विषवाणिज्य १०, यंत्रपीडा ११, निर्लांछनकर्म १२, दवदान १३, सरोवरद्रहादिशोष १४, और असतीपोष १५, इनका विस्तार जैनमतके शास्त्रोंसे जानना यह सप्तम भोगोपभोग व्रत ॥ ७ ॥

अपध्यान करना १, पापोपदेश करना २, हिंसाकारक वस्तु देनी ३, और प्रमादाचरण ४, यह चार प्रकारका अनर्थदण्ड त्याग करे, यह अष्टम अनर्थदंडविरमणव्रत ॥ ८ ॥

सर्व संसारके धंधे छोड़के जघन्य से जघन्य दो घड़ी तक सावद्ययोग का त्याग करके धर्मध्यान में प्रवृत्त होवे। यह नवमा सामायिक व्रत ॥ ९ ॥

पूर्वोक्त सर्व व्रतों का जो संक्षेप करना, सो दशम दिशावकाशिकव्रत ॥ १० ॥

चारों आहारका अथवा पाणी वर्जके तीनों आहारका त्याग करके आठ पहर पर्यन्त पौषधकी क्रिया करे, और धर्मध्यान ध्यावे। यह ग्यारहवां * पौषधोपवासव्रत ॥ ११ ॥

न्यायोपार्जित धनसे जो अन्न अपने खाने वास्ते त्यार हुआ होवे, तिसमें से निर्दोष भिक्षा साधुको देवे। और अंधे, लूले, लंगड़े, आदि जो मांगने को आवें, तिनको अपनी शक्ति के अनुसार

---

* पौषधोपवास व्रत के चार भेद है, जिसमें यह कथन उत्कृष्ट पौषधोपवास सम्बन्धी जानना।

अनुकम्पादान देवे । यह अतिथिसंविभाग नामा बारहवां व्रत १२ । इन बारह व्रतोंका स्वरूप विस्तार सहित श्राद्धप्रज्ञप्ति, आवश्यक सूत्रादि शास्त्रों मे है ।

गृहस्थधर्मीश्रावक के अहोरात्रि के जो कृत्य है, सो अब संक्षेप मे लिखते हैं ॥

रात्रि का आठमा विभाग अर्थात् चार घड़ी जब शेष रात्रि रहे, तब निद्रा छोड़े और मन में सात आठ बार *पंचपरमेष्ठी नमस्कार को स्मरण करे । पीछे मै कौन हूं, मेरी क्या अवस्था है, मेरा क्या कुल है, मेरे मे †मूल गुण कौन कौन से कितने और कैसे हैं,‡ उत्तर गुण कौन २ मे हैं, किस वस्तु का मेरे नियम अभिग्रह विशेष है, तथा मेरे पास धन के होने मे जिनभवन १, जिनबिंब २, तिसकी प्रतिष्ठा ३, पुस्तक लेखन ४, § चतुर्विधसंघ-भक्ति ८, शत्रुंजयादि तीर्थयात्रा ९, इन नव क्षेत्रों में से मैंने किस क्षेत्रको स्पर्शा है, किसको नहीं स्पर्शा, जो क्षेत्र नहीं स्पर्श न किया अर्थात् आराधन नही किया, तिसको आराधन करूं; और दशवैका-लिकादि जो शास्त्र गुरु मुख से नहीं श्रवण किया, तिसके श्रवण करने में प्रयत्न करूं; तथा श्रावक सर्वदा संसार से विरक्त हुआ दीक्षा लेने का ध्यान कदापि नहीं छोड़ता है, तोभी तिसको अवसर मे

---

*अरिहंत १, सिद्ध २, आचार्य ३, उपाध्याय ४, और साधु ५, इन पाचों पदो को पचपरमेष्ठी जैनमत में कहते हैं। और णमो अरिहंताण इत्यादि पचपरमेष्ठी नमस्कार जानना ॥

† बारह व्रतो मे जो आदि के पाचव्रत हैं उनको अणुव्रत तथा मूल गुण कहते है ॥

‡ बारह व्रतो में अन्त के सात व्रतों को उत्तर गुण कहते हैं ॥

§ साधु १, साध्वी २, श्रावक ३, और श्राविका ४, इन को चतुर्विधसंघ कहते हैं ॥

दीक्षा लेने का मनोर्थ करे, ऐसे निशाशेष में जाग के चिन्तवन, करे ॥

पीछे जो कुछ करे, सो लिखते हैं । जब रात्रि मुहूर्त्तमात्र शेष रहे, तब पडावश्यक करे और जो कार्यांतर से व्याकुल होने से षडावश्यक न करे सके, तोभी प्रत्याख्यानावश्यक यथाशक्ति जरूर चिन्तवन करे ॥ रव ८५ (१५७५१)

श्रावक जघन्य से जघन्य सूर्योदय से दो घड़ी पर्यन्त नमस्कार सहित प्रत्याख्यान करे। तिस पीछे सूर्य का अर्द्धबिंब दीखे, तब निर्मल मनोहर वस्त्र पहिर के घरदेहरा में जिनराज की पूजा करे, पीछे महोत्सव पूर्वक बड़े मन्दिर में जाकर पूजा करे । पूजा की विधि जैनशास्त्रों से जानना, देव पूजा करके पीछे नगर मे गुरु होवें, तो तिन को विनयपूर्वकवंदना करे । पीछे गुरु से व्याख्यान सुने। पीछे बाल, वृद्ध, रोगी आदि साधुओं के खान, पान, औषध, पथ्यादि देने में यत्न करे । पीछे न्याय और नीति पूर्वक व्यापार करके धन उपार्जन करे। तिस धन से जो शुद्ध भोजन बना होवे, तिसके नैवेद्य से जिनराज की मध्यान्ह सम्बन्धी पूजा करे । पीछे मुनि आवें, तो तिनको दान देवे। पीछे वृद्ध, रोगी, अतिथि, चौपायादि की सारसंभार अन्न, औषध, पथ्य, चारा, पाणी आदि की चिन्ता करके लौल्यता रहित योग्यभोजन करे, अर्थात् सूतक पातकादि लोकविरुद्ध, और संसक्त अनंतकायिकादि आगमविरुद्ध, मांस मदिरादि उभयलोकविरुद्ध भोजन न करे । तथा लौल्यता से अपनी पाचनशक्ति से अधिक भोजन न करे। पीछे धर्मशास्त्र का परमार्थ चिन्तवन करे। अथवा योग्य वाणिज्य करके अपरान्हदिन व्यतीत करके सूर्यास्त से पहिले फिर जिनपूजा करे । तथा दिन में दो वार भोजन करना होवे, तो चार घड़ी दिन शेष रहे भोजन कर लेवे ॥

त्रिकाल पूजा की विधि ऐसे है । सवेरे वासखुगन्धीचंद-नादि द्रव्यों से पूजा करे, मध्यान्ह में फूलनैवेद्यादि से करे, और संध्या को धूप, दीप, आरात्रिकादि से पूजा करे * इति दिनकृत्य कथन ॥

अब रात्रिकृत्य किंचिन्मात्रलिखते हैं ॥

षडावश्यक करे, और योग्य काल में निद्रा लेवे, प्रायःअब्रह्म-चर्य का वर्जक होवे । सोता हुआ पंचपरमेष्ठी नमस्कार स्मरण करके सोवे, सर्वथा ब्रह्मचर्य पालने समर्थ न होवे, तो ऋतुकाल में संतानार्थे अथवा वेदविकारशमनार्थ निजस्त्री से औदासीन्यता से विकार शमन करे; परं अत्यन्त विषय में रक्त होकर भोग विलास न करे । यह संक्षेप से गृहस्थश्रावकधर्मी का रात्रिकृत्य जानना । यह सर्व संक्षेप से गृहस्थधर्म का वर्णन है ॥

इति तपगच्छाचार्य श्रीश्रीश्री १००८ श्रीमद्विजयानन्द सूरीश्वर (आत्मारामजी) विरचितं सक्षिप्त जैनधर्मस्वरूपम्

(नोट)—*यह उत्सर्ग मार्ग है अपवाद मार्ग में त्रिकाल पूजा विधि न होसके तो प्रातःकाल ही त्रिकाल सम्बन्धिक्रिया करनी योग्य है और प्रायः आजकल यही विधि सर्वत्र देखने में आती है ॥

चिकागो प्रश्नोत्तर।

कौन ऐसा होगा जो श्रीमन्महामुनिराज सूरीश्वरश्री १००८ श्रीमद्विजयानंद (श्रीआत्मारामजी) को न जानता हो, इन्ही महात्मा का रचा हुआ पत्रोंक्त नाम करके प्रश्नोत्तररूप भण्डार हमने छपवाया है। इस ग्रन्थकी विशेष प्रशंसा लिखनी व्यर्थ है, क्योंकि ग्रंथकर्त्ता की विद्वत्ता और न्यायनिपुणता का डंका सर्वत्र वज रहा है, केवल इतनाही लिखा जाता है कि सन् १८९३ में जव मिस्टर वीरचंद राघवजी गांधी चिकागो (अमरीका) की धर्मसमाज में इन महात्मा के प्रतिनिधि होकर गये थे, तव उस समय मिस्टर गांधीके कहनेसे तथा चिकागो धर्मसमाज की प्रेरणासे इन महात्माने तत्वपुंज रूप यह ग्रंथ निर्माण किया, चिकागो निमित्त और चिकागो के प्रश्नों के उत्तर इसमें होनेसे ग्रंथकर्त्ता ने इसका नाम चिकागो प्रश्नोत्तर रक्खा, इसमें ईश्वरकर्त्ता का खण्डन, अन्यमतावलंवियों ने कैसा २ ईश्वर माना है, जैनी कैसा ईश्वर मानते हैं, कर्म क्या है, जीवकर्मका क्या संवंध है, आत्मा में ईश्वर होनेकी शक्ति है वा नहीं, जीव मोक्ष-पदसे पुनः संसारमें नहीं आता, पुनर्जन्मकी सिद्धि, ईश्वरकी भक्ति का फ़ायदा, मूर्त्तिपूजन, मनुष्य और ईश्वरका क्या संवंध है; साधु और गृहस्थीका धर्म, धार्मिक और सांसारिक जीवनके नीतिपूर्वक लक्षण इत्यादि अनेक अतीव उपयोगी विषयोंका समावेश इसमें किया है, ग्रंथकर्त्ताकी फोटोभी वीचमे लगी है, मूल्य केवल १) रु० ॥

—:-०-:—

श्रीजम्बू-नाटक।

यह एक ऐतिहासिक नाटक भरतपुर निवासी वाबू मंगलसिंह जैनी विरचित नवीन छपकर तयार हुआ है, रचना अतीव मनोहर है, सूत्रधार और नटीका प्रवेश, कर्म का प्रवेश और इन दोनों का

परस्पर वार्तालाप; दीक्षाके लिये मातासे जम्बूका आज्ञा मांगना, उसका आज्ञा न देना, जम्बूका फिर आज्ञा मांगना, और इसी तरह जम्बू और माताका आपसमें प्रश्न और उत्तरका होना, आठों स्त्रियोंसे इसीप्रकार जंबूके प्रश्न और उत्तरका होना, चोरो काघरमें प्रवेश और उनमे जंबू की चर्चा, अंतमें माताका आज्ञा देना, और जम्बूका दीक्षा लेना इत्यादि सर्व रचना छन्द, दोहे, चौपई, गजलों में है श्रीमन्महामुनिराज श्रीआत्मारामजी की फोटोभी बीचमें लगाई गई है इतनी उत्तमता होने पर भी मूल्य केवल ।) चार आना ॥

मिलने का पता—

जसवन्तरायजैनी, लाहौर ।